# NCERT Solutions for Class 12 History Chapter 9 उपनिवेशवाद और देहात

**अभ्यास-प्रश्न**

**उत्तर दीजिए (लगभग 100 से 150 शब्दों में)**

प्रश्न 1. ग्रामीण बंगाल के बहुत से इलाकों में जोतदार एक ताकतवर हस्ती क्यों था?

**उत्तरः** 18वीं शताब्दी तक बंगाल (विशेषकर उत्तरी बंगाल) में धनी जमींदारों का उदय हो भी चुका था। इन जोतदारों के पास कई हजार एकड़ भूमि होती थी। इनका स्थानीय व्यापार तथा साहूकारों के कारोबार पर नियंत्रण था। जमीन का बड़ा भाग बटाईदारों द्वारा जोता जाता था जो उपज का आधा भाग जोतदारों को देते थे। गाँवों में जोतदार की शक्ति, जमींदार की ताकत की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली थी।

जमींदार शहरी क्षेत्रों में रहते थे, इसके विपरीत जोतदार गाँवों में ही रहते थे तथा निर्धन ग्रामवासियों के काफी बड़े वर्ग पर सीधे अपने नियन्त्रण का प्रयोग करते थे। उत्तरी बंगाल में जोतदार सबसे अधिक शक्तिशाली थे, हालाँकि धनी किसान तथा गाँव के मुखिया लोग भी बंगाल के अन्य भागों के देहाती क्षेत्रों में प्रभावशाली बनकर उभर रहे थे। कुछ जगहों पर उन्हें 'हवलदार' कहा जाता था तथा कुछ अन्य स्थानों पर वे 'गाँटीदार' अथवा 'मंडल' कहलाते थे। उनके उदय से जमींदारों के अधिकारों का कमजोर पड़ना अवश्यम्भावी था

प्रश्न 2. जमींदार लोग अपनी जमींदारियों पर किस प्रकार नियंत्रण बनाए रखते थे?

**उत्तर:** ब्रिटिश शासनकाल में जमींदार अपनी जमींदारी पर नियन्त्रण बनाये रखने के लिये अनेक उपाय करते थे, जैसेफर्जी बिक्री। बद्रवान जिले के राजा ने अपनी

जमींदारी बचाने के लिए पहले तो अपनी जमींदारी का कुछ भाग अपनी माँ को दे दिया क्योंकि कम्पनी ने यह निर्णय ले रखा था कि महिलाओं की सम्पत्ति को नहीं छीना जायेगा। इसके उपरान्त एजेण्टों ने नीलामी रा था?

की प्रक्रिया में जोड़-तोड़ किया। कम्पनी की राजस्व माँग को जान-बूझकर रोक लिया गया, भुगतान नहीं की गयी राशि बढ़ती गयी। जब भू-सम्पदा का कुछ भाग नीलाम किया गया तो जमींदार के आदमियों ने अन्यों के मुकाबले ऊँची-ऊँची बोलियाँ लगाकर सम्पत्ति को खरीद लिया। आगे चलकर खरीद की राशि अदा करने से मना कर दिया। अतः भू-सम्पदा को पुन: बेचना पड़ा। यही प्रक्रिया पुनः पुनः दोहराई जाती रही। अन्त में सम्पदा को नीची कीमत पर जमींदार को ही बेचना पड़ा। जब कोई बाहरी व्यक्ति नीलामी में कोई जमीन खरीद लेता तो उसे उसका कब्जा नहीं मिलता था। कभी-कभी तो पुराने जमींदारों के लठैत बाहरी व्यक्तियों को मार-मार कर भगा देते थे।

प्रश्न 3. पहाडिया लोगों ने बाहरी लोगों के आगमन पर कैसी प्रतिक्रिया दर्शाई?

**उत्तर:**18वीं शताब्दी में पहाड़ी लोगों को पहाड़िया कहा जाता था। वे राजमहल की पहाड़ियों के इर्दगिर्द रहा करते थे। वे जंगल की उपजे से अपना गुजर-बसर करते थे और झूम खेती किया करते थे। वे जंगल की छोटे-से हिस्से में झाड़ियों को काटकर और घास-फूस को जलाकर जमीन साफ कर लेते थे और राख की पोटाश से उपजाऊ बनी जमीन पर अपने खाने के लिए विभिन्न प्रकार की दालें और ज्वार-बाजरा पैदा करते थे। पहाड़ियों को अपना मूल आधार बनाकर पहाड़ी लोग वहाँ रहते थे। वे अपने क्षेत्र में बाहरी लोगों के प्रवेश का प्रतिरोध करते थे। उनके मुखिया लोग अपने समूह में एकता बनाए रखते थे, आपसी लड़ाई-झगड़े निपटा देते थे और मैदानी लोगों तथा अन्य जातियों से लड़ाई होने पर अपनी जनजाति का नेतृत्व करते थे।

इन पहाड़ियों को अपना मूलाधार बनाकर, पहाड़िया लोग बराबर उन मैदानों पर आक्रमण करते रहते थे जहाँ एक स्थान पर बस कर किसान अपनी खेती-बाड़ी

किया करते थे। पहाड़ियों द्वारा ये आक्रमण अधिकतर अपने आपको विशेष रूप से अकाल या अभाव के वर्षों में जीवित रखने के लिए किए जाते थे। साथ-साथ यह मैदानों में बसे हुए समुदायों पर अपनी ताकत दिखलाने का भी एक तरीका था। इसके अलावा, ऐसे आक्रमण बाहरी लोगों के साथ अपने राजनीतिक संबंध बनाने के लिए भी किए जाते थे। मैदानों में रहने वाले जमींदारों को अकसर इन पहाड़ी मुखियाओं को नियमित रूप से खिराज देकर उनसे शांति खरीदनी पड़ती थी। इसी प्रकार, व्यापारी लोग भी इन पहाड़ियों द्वारा नियंत्रित रास्तों का इस्तेमाल करने की अनुमति पत करने हेतु उन्हें कुछ पथ-कर दिया करते थे।

जब ऐसा पथ-कर पहाड़िया मुखियाओं की मिल जाता था तो वे व्यापारियों की रक्षा करते थे और यह भी आश्वस्त करते थे कि कोई भी उनके माल को नहीं लूटेगा। इस प्रकार कुछ लेदेकर की गई शांति संधि अधिक लंबे समय तक नहीं चली। यह 18वीं शताब्दी के अंतिम दशकों में उस समय भंग हो गई जब स्थिर खेती के क्षेत्र की सीमाएँ आक्रामक रीति से पूर्वी भारत में बढ़ाई जाने लगीं। ज्यों-ज्यों स्थायी कृषि का विस्तार होता गया, जंगलों तथा चारागाहों का क्षेत्र संकुचित होता गया। इससे पहाड़ी लोगों तथा स्थायी खेतीहरों के बीच झगड़ा तेज हो गया। पहाड़ी लोग पहले से अधिक नियमित रूप से बसे हुए गाँवों पर आक्रमण करने लगे और ग्रामवासियों से अनाज और पशु छीन-झपटकर ले जाने लगे। 1770 के दशक में शांति स्थापना की कोशिश की गई जिसके अनुसार पहाड़िया मुखियाओं को अंग्रेजों द्वारा एक वार्षिक भत्ता दिया जाना था और बदले में उन्हें अपने आदमियों का चाल-चलन ठीक रखने की जिम्मेदारी लेनी पड़ती थी। ज्यादातर मुखियाओं ने भत्ता लेने से इनकार कर दिया। और जिन्होंने इसे स्वीकार किया, उनमें से अधिकांश अपने समुदाय में अपनी सत्ता खो बैठे। औपनिवेशिक सरकार के वेतनभोगी बन जाने से उन्हें अधीनस्थ कर्मचारी या वैतनिक मुखिया माना जाने लगा।

प्रश्न 4. संथालों ने ब्रिटिश शासन के विरुद्ध विद्रोह क्यों किया?

**उत्तर:** ईस्ट इंडिया कम्पनी ने संथालों को स्थायी कृषि के लिए राजमहल की

पहाड़ियों में दामिन-ए-कोह के नाम से भूमि दी थी। संथाल जनजाति ने जिस भूमि को कृषि योग्य बनाया उस पर कृषि करना आरम्भ कर दिया, परन्तु उस पर ब्रिटिश सरकार भारी कर लगा रही थी। बाहरी व्यक्ति अथवा साहूकार, जिसे संथाल दिकू कहा करते थे, संथालों को अत्यधिक ऊँची दर पर कर्ज दिया करते थे। कर्ज न चुका पाने की स्थिति में वे अपनी जमीन से हाथ धो बैठते थे। संथाल लोग, **1850** के दशक तक यह महसूस करने लगे कि अपने लिये एक आदर्श संसार का निर्माण करने के लिए, जहाँ उनका अपना शासन हो, वहीं जमींदार, साहूकार तथा औपनिवेशिक राज्य के विरुद्ध विद्रोह करने का समय अब आ गया है। इस प्रकार **1855-56** ई. में सीदी तथा कान्हू के नेतृत्व में संथालों ने अपना जबरदस्त विद्रोह कर दिया। .

प्रश्न 5. वक्कन के रैयत ऋणदाताओं के प्रति ऋद्ध क्यों

**उत्तरः**

1. दक्कन में एक ओर ऋण का स्रोत सूख गया, वहीं दूसरी ओर राजस्व की माँग बढ़ा दी गई कंपनी उपज का लगभग 50 | प्रतिशत रैयत से ले लेती थी। रैयत उस हालत में नहीं थे कि इस बढ़ी माँग को पूरा कर सकें।

2. 1832 के बाद कृषि उत्पादों की कीमतों में तेज़ी से गिरावट आई और लगभग डेढ़ दशक तक इस स्थिति में कोई सुधार नहीं आया। इसके परिणामस्वरूप किसानों की आय में और भी गिरावट आई। इस दौरान 1832-34 के वर्षों में देहाती इलाके अकाल की चपेट में आकर बरबाद हो गए। दक्कन का एक-तिहाई पशुधन मौत के मुँह में चला गया और आधी मानव जनसंख्या भी काल का ग्रास बन गई। और जो बचे, उनके पास भी उस संकट का सामना करने के लिए खाद्यान्न नहीं था। राजस्व की बकाया राशियाँ आसमान को छुने लगीं। ऐसे समय किसान लोग ऋणदाता से पैसा उधार लेकर राजस्व चुकाने लगे। लेकिन यदि रैयत ने एक बार ऋण ले लिया तो उसे वापस करना उनके

लिए कठिन हो गया। कर्ज बढ़ता गया, उधार की राशियाँ बकाया रहती गईं और ऋणदाताओं पर किसानों की निर्भरता बढ़ती गई।

3. महाराष्ट्र में निर्यात व्यापारी और साहूकार अब दीर्घावधिक ऋण देने के लिए उत्सुक नहीं रहे। क्योंकि उन्होंने यह देख लिया था कि भारतीय कपास की माँग घटती जा रही है और कपास की कीमतों में भी गिरावट आ रही है। इसलिए उन्होंने अपना कार्य व्यवहार बंद करने, किसानों को अग्रिम राशियाँ प्रतिबंधित करने और बकाया ऋणों को वापिस माँगने का निर्णय लिया। एक ओर तो ऋण का स्रोत सूख गया, वहीं दूसरी ओर राजस्व की माँग बढ़ा दी गई। पहला राजस्व बंदोबस्त 1820 और 1830 के दशकों में किया गया था। अब अगला बंदोबस्त करने का समय आ गया था और इस नए बंदोबस्त में माँग को, नाटकीय ढंग से 50 से 100 प्रतिशत तक बढ़ा दिया गया।

4. ऋणदाता द्वारा ऋण देने से इनकार किए जाने पर रैयत समुदाय को बहुत गुस्सा आया। वे इस बात के लिए ही क्रुद्ध नहीं थे कि वे ऋण के गर्त में गहरे-से-गहरे डूबे जा रहे थे अथवा वे अपने जीवने को बचाने के लिए ऋणदाता पर पूर्ण रूप से निर्भर थे, बल्कि वे इस बात से ज्यादा नाराज थे कि ऋणदाता वर्ग इतना संवेदनहीन हो गया है कि वह उनकी हालत पर कोई तरस नहीं खा रहा है। ऋणदाता लोग देहात के प्रथागत मानकों यानी रूढ़ि-रिवाजों का भी उल्लंघन कर रहे थे।

**निम्नलिखित पर एक लघु निबंध लिखिए (लगभग 250 से 300 शब्दों में)**

प्रश्न 6. इस्तमरारी बंदोबस्त के बाद बहुत-सी जमींदारियाँ क्यों नीलाम कर दी गई ?

**उत्तरः** गवर्नर जनरल लॉर्ड कार्नवालिस ने 1793 ई० में भू-राजस्व वसूली की एक नयी पद्धति प्रचलित की जिसे 'स्थायी बंदोबस्त', 'ज़मींदारी प्रथा' अथवा 'इस्तमरारी बंदोबस्त के नाम से जाना जाता है। इस बंदोबस्त के अंतर्गत

ज़मींदारों द्वारा सरकार को दिया जाने वाला वार्षिक लगान स्थायी रूप से निश्चित कर दिया गया। जमींदार द्वारा लगान की निर्धारित धनराशि का भुगतान न किए जाने पर सरकार उसकी भूमि का कुछ भाग बेचकर लगान की वसूली कर सकती थी। इस्तमरारी बंदोबस्त के बाद बहुत-सी ज़मींदारियाँ नीलाम की जाने लगीं।

**इसके अनेक कारण थे:**

1. कंपनी द्वारा निर्धारित प्रारंभिक राजस्व माँगें अत्यधिक ऊँची थीं। स्थायी अथवा इस्तमरारी बंदोबस्त के अंतर्गत राज्य की राजस्व माँग का निर्धारण स्थायी रूप से किया गया था। इसका तात्पर्य था कि आगामी समय में कृषि में विस्तार तथा मूल्यों में होने वाली वृद्धि का कोई अतिरिक्त लाभ कंपनी को नहीं मिलने वाला था। अतः इस प्रत्याशित हानि को कम-सेकम करने के लिए कंपनी राजस्व की माँग को ऊँचे स्तर पर रखना चाहती थी। ब्रिटिश अधिकारियों का विचार था कि कृषि उत्पादन एवं मूल्यों में होने वाली वृद्धि के परिणामस्वरूप ज़मींदारों पर धीरे-धीरे राजस्व की माँग का बोझ कम होता जाएगा और उन्हें राजस्व भुगतान में कठिनता का सामना नहीं करना पड़ेगा। किंतु ऐसा संभव नहीं हो सका। परिणामस्वरूप ज़मींदारों के लिए राजस्व-राशि का भुगतान करना कठिन हो गया।

2. उल्लेखनीय है कि भू-राजस्व की ऊँची माँग का निर्धारण 1790 के दशक में किया गया था। इस काल में कृषि उत्पादों के मूल्य कम थे जिसके परिणामस्वरूप रैयत (किसानों) के लिए जमींदारों को उनकी देय राशि का भुगतान करना कठिन था। इस प्रकार जमींदार किसानों से राजस्व इकट्ठा नहीं कर पाता था और कंपनी को अपनी निर्धारित धनराशि का भुगतान करने में असमर्थ हो जाता था।

3. राजस्व की माँग में परिवर्तन नहीं किया जा सकता था। उत्पादन अधिक हो या बहुत कम, राजस्व का भुगतान ठीक समय पर करना होता था। इस संबंध

में सूर्यास्त कानून का अनुसरण किया जाता था। इसका तात्पर्य था कि यदि निश्चित तिथि को सूर्य छिपने तक भुगतान नहीं किया जाता था तो ज़मींदारियों को नीलाम किया जा सकता था।

4. इस्तमरारी अथवा स्थायी बंदोबस्त के अंतर्गत ज़मींदारों के अनेक विशेषाधिकारों को समाप्त कर दिया गया था। उनकी सैनिक टुकड़ियों को भंग कर दिया गया; उनके सीमा शुल्क वसूल करने के अधिकार को समाप्त कर दिया गया था। उन्हें उनकी स्थानीय न्याय तथा स्थानीय पुलिस की व्यवस्था करने की शक्ति से भी वंचित कर दिया गया। परिणामस्वरूप अब ज़मींदार शक्ति प्रयोग द्वारा राजस्व वसूली नहीं कर सकते थे।

5. राजस्व वसूली के समय ज़मींदार का अधिकारी जिसे सामान्य रूप से 'अमृला' कहा जाता था, ग्राम में जाता था। कभी कम मूल्यों और फ़सल अच्छी न होने के कारण किसान अपने राजस्व का भुगतान करने में असमर्थ हो जाते थे, तो कभी रैयत जानबूझकरे ठीक समय पर राजस्व का भुगतान नहीं करते थे। इस प्रकार जमींदार ठीक समय पर राजस्व का भुगतान नहीं कर पाता था और उसकी जमींदारी नीलाम कर दी जाती थी।

6. कई बार ज़मींदार जानबूझकर राजस्व का भुगतान नहीं करते थे। भूमि के नीलाम किए जाने पर उनके अपने एजेन्ट कम-से-कम | बोली लगाकर उसे (अपने जमींदार के लिए) प्राप्त कर लेते थे। इस प्रकार जमींदार को राजस्व के रूप में पहले की अपेक्षा कहीं कम धनराशि का भुगतान करना पड़ता था।

प्रश्न 7. पहाड़िया लोगों की आजीविका संथालों की आजीविका से किस रूप से भिन्न थी ?

**उत्तरः** पहाड़िया लोग राजमहल की पहाड़ियों के आस-पास रहते थे। संथालों को ब्रिटिश अधिकारियों ने जमीनें देकर राजमहल को तलहटी में बसने के लिए तैयार किया था। उल्लेखनीय है कि ब्रिटिश अधिकारियों की नीति कृषि भूमि का

विस्तार करके कंपनी के राजस्व में वृद्धि करने की थी। इसके लिए उन्होंने राजमहल की पहाड़ियों में रहने वाले पहाड़िया लोगों को एक स्थान पर रहकर स्थायी खेती करने के लिए प्रोत्साहित किया था। किंतु पहाड़िया लोग जंगलों को काटकर स्थायी कृषि करने के लिए तैयार नहीं हुए। अतः ब्रिटिश अधिकारियों ने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए संथालों को वहाँ बसा दिया। पहाड़िया लोगों की आजीविका संथालों की आजीविका से कई रूपों में भिन्न थी।

1. पहाड़िया लोग झूम खेती करते थे और जंगल के उत्पादों से अपना जीविकोपार्जन करते थे। जंगल के छोटे से भाग में झाड़ियों को काटकर तथा घास-फूस को जलाकर वे ज़मीन साफ़ कर लेते थे। राख की पोटाश से ज़मीन पर्याप्त उपजाऊ बन जाती थी। पहाड़िया लोग उस ज़मीन पर अपने खाने के लिए विभिन्न प्रकार की दालें और ज्वार- बाजरा उगाते थे। इस प्रकार वे अपनी आजीविका के लिए जंगलों और चरागाहों पर निर्भर थे। किंतु संथाल स्थायी खेती करते थे। उन्होंने अपने परिश्रम से अपने कृषि क्षेत्र की सीमाओं में पर्याप्त वृद्धि करके इसे एक उपजाऊ क्षेत्र के रूप में बदल दिया था।

2. पहाड़िया लोगों की खेती मुख्य रूप से कुदाल पर आश्रित थी। वे कुदाल से जमीन को थोड़ा खुरच लेते थे और कुछ वर्षों तक उस साफ़ की गई ज़मीन में खेती करते रहते थे। तत्पश्चात् वे उसे कुछ वर्षों के लिए परती छोड़ देते थे और नए क्षेत्र में जमीन तैयार करके खेती करते थे। कुछ समय के बाद परती छोड़ी गई जमीन अपनी खोई हुई उर्वरता को प्राप्त करके पुनः खेती योग्य बन जाती थी। संथाल हल से खेती करते थे। वे नई ज़मीन साफ करने में अत्यधिक कुशल थे। अपने परिश्रम से उन्होंने चट्टानी भूमि को भी अत्यधिक उपजाऊ बना दिया था।

3. कृषि के अतिरिक्त जंगल के उत्पाद भी पहाड़िया लोगों की आजीविका के साधन थे। जंगल के फल-फूल उनके भोजन के महत्त्वपूर्ण अंग थे। वे खाने के लिए महुआ के फूल एकत्र करते थे। वे काठ कोयला बनाने के लिए लकड़ियाँ

एकत्र करते थे। रेशम के कोया (रेशम के कीड़ों का घर या घोंसला) एवं राल इकट्ठी करके बेचते थे। पेड़ों के नीचे उगने वाले छोटे-छोटे पौधे अथवा परती जमीन पर उगने वाली घास-फूस उनके पशुओं के चारे के काम आती थी। इस प्रकार शिकार करना, झूम खेती करना, खाद्य संग्रह, काठ कोयला बनाना, रेशम के कीड़े पालना आदि पहाड़िया लोगों के मुख्य व्यवसाय थे। खानाबदोश जीवन को छोड़कर एक स्थान पर बस जाने के कारण संथाल स्थायी खेती करने लगे थे, वे बढ़िया तम्बाकू और सरसों जैसी वाणिज्यिक फसलों को उगाने लगे थे। परिणामस्वरूप, उनकी आर्थिक स्थिति उन्नत होने लगी और वे व्यापारियों एवं साहूकारों के साथ लेन-देन भी करने लगे।

4. अपने व्यवसायों के कारण उनका जीवन जंगल से घनिष्ठ रूप से जुड़ा हुआ था। वे सीधासादा जीवन व्यतीत करते थे और प्रकृति की गोद में निवास करते थे। वे इमली के पेड़ों के झुरमुटों में अपनी झोंपड़ियाँ बनाते थे और आम के पेड़ों की ठंडी छाँव में आराम करते थे। संपूर्ण क्षेत्र की भूमि को वे अपनी निजी भूमि समझते थे। यह भूमि ही उनकी पहचान तथा जीवन का प्रमुख आधार थी। पहाड़िया लोग समूहों में संगठित थे। प्रत्येक समूह का एक मुखिया होता था। उसका प्रमुख कार्य अपने समूह में एकता बनाए रखना था। मुखिया अपने-अपने समूह के पारस्परिक झगड़ों का निपटारा करके उनमें शांति बनाए रखते थे। वे अन्य जनजातियों अथवा मैदानी लोगों के साथ संघर्ष की स्थिति में अपनी जनजाति का नेतृत्व भी करते थे। संथाल एक क्षेत्र विशेष में रहते थे। 1832 ई0 तक एक विशाल भू-क्षेत्र का सीमांकन दामिन-एकोह अथवा संथाल परगना के रूप में कर दिया गया था। इस क्षेत्र को संथाल भूमि घोषित कर दिया गया और इसके चारों तरफ खंभे लगाकर इसकी परिसीमा का निर्धारण कर दिया गया।

5. पहाड़िया लोग उन मैदानी भागों पर बार-बार आक्रमण करते रहते थे, जहाँ किसानों द्वारा एक स्थान पर बसकर स्थायी खेती की जाती थी। इस प्रकार के आक्रमण प्रायः अभाव अथवा अकाल के वर्षों में खाद्य सामग्री को लूटने, शक्ति

का प्रदर्शन करने अथवा बाहरी लोगों के साथ राजनैतिक संबंध स्थापित करने के लिए किए जाते थे। इस प्रकार मैदानों में रहने वाले लोग प्रायः पहाड़िया लोगों के आक्रमणों से भयभीत रहते थे। मैदानों में रहने वाले जमींदार पहाड़िया लोगों के आक्रमणों से बचाव के लिए पहाड़िया मुखियाओं को नियमित रूप से खिराज का भुगतान करते थे। व्यापारियों को भी पहाड़िया लोगों द्वारा नियंत्रित मार्गों का प्रयोग करने के लिए पथकर का भुगतान करना पड़ता था। किंतु संथाल लोगों के जमींदारों और व्यापारियों के साथ संबंध प्रायः मैत्रीपूर्ण होते थे। वे व्यापारियों एवं साहूकारों के साथ लेन-देन भी करते थे।

प्रश्न 8. अमेरिकी गृहयुद्ध ने भारत में रैयत समुदाय के जीवन को कैसे प्रभावित किया?

**उत्तरः**

अमेरिकी गृहयुद्ध का भारत के रैयत समुदाय पर प्रभाव-1860 के दशक से पहले ब्रिटेन में कच्चे माल के रूप में आयात की जाने वाली कपास का तीन-चौथाई भाग संयुक्त राज्य अमेरिका से आता था। ब्रिटेन के सूती वस्त्र निर्माता एक लम्बे समय से अमेरिकी कपास पर अपनी निर्भरता के कारण काफी परेशान थे तथा सोचते थे कि यदि अमेरिका से आयात बन्द हो गया तो हमारे व्यापार का क्या होगा। अतः ब्रिटेन ने भारत को एक ऐसा देश माना जो अमेरिका से कपास की आपूर्ति बन्द होने की दशा में उन्हें कपास उपलब्ध करा सके। 1861 ई. में अमेरिका में गृहयुद्ध छिड़ गया जिससे ब्रिटेन के कपास क्षेत्र में तहलका मच गया। अमेरिका से आने वाली अच्छी कपास के आयात में भारी गिरावट आ गई जिसके फलस्वरूप भारत से ब्रिटेन को कपास का निर्यात किया जाने लगा। इसका भारत के रैयत समुदाय पर निम्नलिखित प्रभाव पड़ा

(i) भारत में कपास उत्पादन को प्रोत्साहन-ब्रिटेन द्वारा भारत से कपास आयात करने के फैसले से बम्बई सरकार को कपास उत्पादन को प्रोत्साहन प्रदान करने को कहा गया। बम्बई में कपास के सौदागरों ने कपास की आपूर्ति का आकलन

करने एवं कपास की खेती को अधिकाधिक प्रोत्साहन देने के लिए कपास पैदा करने वाले जिलों का दौरा किया।

(ii) किसानों को ऋणदाताओं द्वारा अग्रिम ऋण प्रदान करना-ग्रामीण ऋणदाताओं ने किसानों को अधिकाधिक कपास उगाने हेतु अग्रिम राशि देना प्रारम्भ कर दिया क्योंकि कपास की कीमतों में लगातार वृद्धि हो रही थी। इस बात का दक्कन के ग्रामीण क्षेत्रों पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा। दक्कन के ग्रामीण क्षेत्रों के रैयतों (किसानों) को अचानक असीमित ऋण उपलब्ध होने लगा। उन्हें कपास उगाने वाली प्रत्येक एकड़ भूमि के लिए 100 रु. अग्रिम राशि दी जाने लगी। साहूकार लम्बी अवधि के लिए भी ऋण देने को तैयार थे।

(ii) कपास के उत्पादन में निरन्तर वृद्धि-जब तक संयुक्त राज्य अमेरिका में गृहयुद्ध की स्थिति बनी रही तब तक बम्बई दक्कन में कपास का उत्पादन बढ़ता रहा। 1860 से 1864 ई. के दौरान कपास उगाने वाले क्षेत्रों की संख्या दो गुनी हो गयी। 1862 ई. तक स्थिति यह हो गयी कि ब्रिटेन के कुल कपास आयात का लगभग 90 प्रतिशत भाग अकेले भारत से जाता था।

(iv) धनी कृषकों को लाभ-अमेरिकी गृहयुद्ध के कारण कपास उत्पादन में आयी तेजी से समस्त कृषकों को लाभ प्राप्त नहीं हुआ केवल धनी कृषक ही इसका लाभ प्राप्त कर सके। अधिकांश कृषक ऋण के बोझ से और अधिक दब गये।

(v) भारत से कपास निर्यात में कमी एवं रैयत समुदाय की कठिनाइयों में वृद्धि होना-1865 ई. में संयुक्त राज्य अमेरिका में गृहयुद्ध समाप्त हो गया तथा वहाँ कपास का उत्पादन पुनः प्रारम्भ हो गया जिसके फलस्वरूप ब्रिटेन को भारतीय कपास के निर्यात में कमी आती चली गयी। इस स्थिति में कपास व्यापारी एवं साहूकारों ने कपास की गिरती हुई कीमतों को देखते हुए किसानों को ऋण देने से मना कर दिया और अपने बकाया ऋणों की वसूली करने का निर्णय किया। किसानों के लिए एक तो ऋण का स्रोत समाप्त हो गया, वहीं दूसरी ओर राजस्व जमा कराना मुश्किल हो गया जिसके फलस्वरूप किसानों की मुसीबतें

बढ़ती चली गयीं। ऋण चुकाने के लिए किसानों को अपनी जमीन व बैलगाड़ी आदि भी बेचनी पड़ी। इस प्रकार अमेरिकी गृहयुद्ध का भारतीय रैयत पर विपरीत प्रभाव पड़ा। केवल धनी रैयतों को छोड़कर सभी की हालत खराब हो गयी थी।

प्रश्न 9. किसानों का इतिहास लिखने में सरकारी स्रोतों के उपयोग के बारे में क्या समस्याएँ आती हैं?

**उत्तरः** यह सत्य है कि इतिहास के पुनर्निर्माण में सरकारी स्रोतों; जैसे-राजस्व अभिलेखों, सरकार द्वारा नियुक्त सर्वेक्षणकर्ताओं की रिपोर्टों और पत्रिकाओं आदि का महत्त्वपूर्ण स्थान है। किंतु किसानों का इतिहास लिखने में सरकारी स्रोतों का उपयोग करते समय लेखक को निम्नलिखित समस्याओं का सामना करना पड़ता है

1. सरकारी स्रोत वास्तविक स्थिति को निष्पक्ष वर्णन नहीं करते। अतः उनके द्वारा प्रस्तुत विवरणों को पूरी तरह सत्य नहीं माना जा सकता।

2. सरकारी स्रोत विभिन्न घटनाओं के संबंध में किसी-न-किसी रूप में सरकारी दृष्टिकोण एवं अभिप्रायों के पक्षधर होते हैं। वे विभिन्न घटनाओं का विवरण सरकारी दृष्टिकोण से ही प्रस्तुत करते हैं।

3. सरकारी स्रोतों की सहानुभूति प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से सरकार के प्रति ही होती है।

वे किसी-न-किसी रूप में पीड़ितों के स्थान पर सरकार के ही हितों के समर्थक होते हैं । उदाहरण के लिए, दक्कन दंगा आयोग की नियुक्ति विशेष रूप से यह पता लगाने के लिए की गई थी कि सरकारी राजस्व की माँग का विद्रोह के प्रारंभ में क्या योगदान था अथवा क्या किसान राजस्व की ऊँची दर के कारण विद्रोह के लिए उतारू हो गए थे। आयोग ने संपूर्ण जाँच-पड़ताल करने के बाद जो रिपोर्ट प्रस्तुत की उसमें विद्रोह का प्रमुख कारण ऋणदाताओं अथवा

साहूकारों को बताया गया। रिपोर्ट में स्पष्ट रूप से यह कहा गया कि सरकारी माँग किसानों की उत्तेजना अथवा क्रोध का कारण बिलकुल नहीं थी किन्तु आयोग इस प्रकार की टिप्पणी करते हुए यह भूल गया कि आखिर किसान साहूकारों की शरण में जाते क्यों थे । वास्तव में, सरकार द्वारा निर्धारित भू-राजस्व की दर इतनी अधिक थी और वसूली के तरीके इतने कठोर थे कि किसान को विवशतापूर्वक साहूकार की शरण में जाना ही पड़ता था। इसका स्पष्ट अभिप्राय यह था कि औपनिवेशिक सरकार जनता में व्याप्त असंतोष अथवा रोष के लिए स्वयं को उत्तरदायी मानने के लिए तैयार नहीं थी। अतः किसान इतिहास लेखन में सरकारी स्रोतों का उपयोग करते हुए कुछ बातों का विशेष रूप से ध्यान रखा जाना चाहिए। उदाहरण के लिए

1. सरकारी रिपोर्टों का अध्ययन अत्यधिक सावधानीपूर्वक किया जाना चाहिए ।
2. सरकारी रिपोर्टों से उपलब्ध साक्ष्य वैधिक अभिलेखों आदि में उपलब्ध पहुँचना चाहिए। का मिलान समाचार-पत्रों, गैर-सरकारी विवरणों, साक्ष्यों से करने के बाद ही किसी निष्कर्ष पर पहुँचना चाहिए ।